Shodhaamrit, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : Page No.-337-340

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No- 337-340
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. श्रीकांत लक्ष्मणराव आरले
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
ओड़िशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट.

Corresponding Author :

डॉ. श्रीकांत लक्ष्मणराव आरले
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
ओड़िशा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट.

वेदांग छंद का सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्व

शोधसार : ज्ञानामृत वेद भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल आधार हैं। जो धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, भाषा-वैज्ञानिक, शास्त्रीय, काव्यशास्त्रीय, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार के ज्ञान से भरपूर हैं। सभी वेदों की रचना मंत्रों में हुई है। इन मंत्रों में निहित ज्ञानात्मक गूढ़ तत्वों के अध्ययन के लिए वेदांग साहित्य विकसित हुआ है। इन वेदों के छह अंगों के माध्यम से वैदिक मंत्रों का अध्ययन कर समाज कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति की जाती है। इन छह वेदांगों में, शुद्ध उच्चारण, भाषा अर्थात् व्याकरण, छंदशास्त्र, शब्दों की व्युत्पत्ति, खगोलविज्ञान, यज्ञ के विधि-विधान आदि से संबंधित शिक्षा, व्याकरण, छंद, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प वेदांग विकसित हुए।

इनमें छंद को वेद पुरुष के पैर कहा गया। जो शरीर का महत्वपूर्ण अंग होता है। वेदों में छंदों का उल्लेख है। ऋगवेद में प्रमुख सात छंदों - गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती का प्र□ोग हुआ है। यास्क ने छन्दस् का निर्वचन दिया है – 'छन्दांसि छादनात्' अर्थात् छंद भावों को आच्छादित करके उसे समष्टिरुप प्रदान करता है। इसके कारण छंद गेय और सुपाठ्य हो जाता है। कात्यायन ने छंद का लक्षण दिया है – 'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'। जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छंद कहते हैं। छंद वैदिक मंत्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ-साथ संगीतात्मकता और लयात्मकता उत्पन्न कर पठनीयता तथा स्मरणीयता को जीवंत बना देते है। छंदों की लयात्मकता ने मंत्रों को याद रखने, दोहराने और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखने में सहायता की। इससे वैदिक मंत्रों के मौखिक परंपरा की रक्षा ही होती है। यह भारतीय संस्कृति की रक्षा है। छंदशास्त्र ने वेदों को काव्यात्मक रूप प्रदान कर उसका नियमन किया तथा उसे सौंदर्यपूर्ण बनाया। आधुनिक संदर्भों में आज भी छंदशास्त्र न केवल वैदिक अध्ययन में बल्कि काव्य-निर्माण, संगीत और नाट्य आदि में मूलाधार है।

मुख्य शब्द : वेद, वेदांग, छंद, भारतीय, ज्ञान-परंपरा, संस्कृति, साहित्य, मंत्र।

प्रस्तवाना : भारतीय ज्ञान-परंपरा अति प्राचीन काल से प्रवाहित होती आ रही है। जितनी वह निर्मल व निर्झर उद्गम काल में थी आज भी उतनी

ही प्रकाशमान एवं पथप्रदर्शक है। इस ज्ञान परंपरा में हमारे वेद-वेदांग साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। वैदिक साहित्य भारत की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। इन वेदों से भारत का ही नहीं संपूर्ण विश्व का मार्ग प्रशस्त होता है। भारतीय अस्तित्व एवं अस्मिता के परिचायक वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, भाषावैज्ञानिक, शास्त्रीय, काव्यशास्त्रीय, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। जिनकी रचना मंत्रों में हुई है, जिसमें समस्त विश्व को एक कुटुंब के रूप में परिकल्पित कर उसके कल्याण की कामना की गई है। उनमें निहित ज्ञान की प्राप्ति के लिए कड़ी तपस्या की आवश्यकता होती है। वैदिक मंत्रों के ज्ञानात्मक गूढ़ तत्वों के अध्ययन हेतु वेदांग साहित्य विकसित हुआ। वेदांग शब्द से ही स्पष्ट होता है कि वेद के अंग, अर्थात् "वेदों के गूढ़ एवं वास्तविक अर्थों को जानने के लिए जिन सहायक तत्वों की आवश्यकता होती है उन्हें 'वेदांग' कहते हैं। वेदांगों के द्वारा मंत्रों का अर्थ, उनकी व्याख्या तथा यज्ञ में उनके विनियोग आदि का बोध होता है।"[1]

वेद एवं वेदांग : वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण, भाषा अर्थात् व्याकरण, छंदशास्त्र, शब्दों की व्युत्पत्ति, खगोलविज्ञान, यज्ञ के विधि-विधान आदि विषयों में निहित गूढ़ अर्थों को समझने के लिए विविध अंगों से अध्ययन की आवश्यकता थी, जिसके कारण 6 वेदांगों की उत्पत्ति हुई। क्रमशः शिक्षा, व्याकरण, छंद, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प वेदांग विकसित हुए।

"शिक्षा व्याकरणं छंदों निरुक्तम ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।"[2]

पाणिनीय-शिक्षा में इन छह वेदांगों का वेद-पुरुष के 6 अंगों के रूप में वर्णन है। जैसे- छंद वेदपुरुष के पैर हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा नाक है और व्याकरण मुख है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।। (पा. शिक्षा 41-42)

छंदों को वेद पुरुष के पैर कहा गया है। जिस प्रकार पैर शरीर को स्थिरता प्रदान करते हैं उसी प्रकार छंद साहित्य को। वेदों के अधिकांश मंत्र छंदों में रचित हैं। वेदों में सर्वत्र छंदों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋगवेद में गायत्री आदि छंद प्राप्त होते हैं। विद्वानों द्वारा छंद के दो अर्थ बताए गए हैं। एक आच्छादन, दूसरा आह्लादन। प्रथम से रस, भाव तथा वर्ण्यविषय को आच्छादित किया जाता है तो दूसरे से मानव मन का मनोरंजन किया जाता है। ये छंद की दो विशेषताएँ हैं। इनका समन्वय करते हुए कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने लिखा है कि, "पहली विशेषता छंद की स्थिति (आवरण क्षमता) की सूचिका है। दूसरी उसके लक्ष्य और सिद्धि की संकेतिका है। तात्पर्य यह कि छन्द-प्रयोग की सफलता तभी मानी जायेगी जब वह अपने 'आच्छादन' (आवरण) के द्वारा कविता में 'आह्लादन' (हर्ष और दीपन) अनुस्यूत करने में समर्थ हो।"[3] साहित्य का मुख्य उद्देश्य आनंद प्रदान करना है। छंदों का आच्छादन साध्यरूपी इस आनंद का साधन है। साधन के बिना साध्य और साध्य के बिना साधन दोनों अपूर्ण होते हैं। इसलिए छंदों की दोनों विशेषताएँ साहित्य के उद्देश्य की पूर्ति ही करते हैं।

छंद का अर्थ एवं परिभाषा : 'छंद' शब्द छद् (ढकना) धातु से बना है। पहली विशेषता का समर्थन करते हुए यास्क ने (निरुक्त, दैवत कांड 7/12) छन्दस् का निर्वचन दिया है – 'छन्दांसि छादनात्' अर्थात् छंद भावों को आच्छादित करके उसे समष्टिरूप प्रदान करता है। इसके कारण छंद गेय और सुपाठ्य हो जाता है। कात्यायन ने छंद का लक्षण दिया है – 'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'। जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छंद कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक छंदों का आधार अक्षर या वर्णों की संख्या है। अक्षरों की संख्या के आधार पर ही छंदों के नाम रखे गए हैं।[4] छंद मात्रा और लय का शास्त्र है। छंदों की संरचना संगीत और लय से जुड़ी होती है। जिसका उद्देश्य मंत्रों की लय, ताल और मात्रा का संरक्षण करना, वेदपाठ को मधुर, श्रवणीय और शुद्ध

बनाए रखना है।

वेदों में बीस छंदों का प्रयोग हुआ है। मुख्य सात छंद है – गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती। पद्य की रचना एवं नियमपूर्वक उसके पाठ के लिए छंदशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता होती है। छंदों के ज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन-अध्यापन करने वालों की निंदा की गई है। छंदों की उत्पत्ति, भेद, उपभेद, लक्षण उदाहरण, रचना-प्रक्रिया आदि से संबंधित इतिहास तथा नियमों का वर्णन करने वाले शास्त्र को छंदशास्त्र कहते हैं। छंद और छंदशास्त्र का संबंध भाषा और व्याकरण के संबंध के समान होता है। जिस प्रकार व्याकरण केवल भाषा में प्रयुक्त शब्दों का नियमन करता है उसी प्रकार छंदशास्त्र भी काव्य में प्रयुक्त छंद का नियमन करता है। जिस प्रकार गद्य का नियामक व्याकरण है उसी प्रकार काव्य का नियामक छंदशास्त्र है। कवि के अनुभवों की अभिव्यक्ति छंदों में होती है या यूँ कहे कि अभिव्यक्ति से छंदों की निर्मिती होती है। "गति, रमणीयता नाद-सौंदर्य, वाचिक संप्रेषण करने की क्षमता, आत्मविभोर होने / करने आदि के निमित्त कविता में छंद का विधान आवश्यक होता है।"[5] स्पष्ट है कि छंदों के प्रयोग से कवि की अभिव्यक्ति और श्रोता की ग्रहनीयता प्रभावकारी सिद्ध होती है। अन्य एक स्थान पर छंद के लक्षणों को बताया गया है। "छंद के मुख्य लक्षण हैं - (1) भावों का संवरण, (2) प्रकाशन तथा (3) आह्लादना। इस दृष्टि से रुचिकर और लययुक्त वह वाणी जिसे सुनते ही मन आह्लादित हो जाता है, छंद है। ...भावों को आच्छादित कर अपने में सीमित करने वाली शब्द संघटना को, जिसमें अक्षरों के क्रम, मात्राओं की गणना, यति-गति से संबंधित विशिष्ट नियमों में नियोजित रुचिकर, श्रुतिप्रिय ध्वनि हो, छंद कह सकते हैं।"[6] इन लक्षणों से उत्पन्न छंद की परिभाषा कुछ इस प्रकार होगी – "जो अक्षरों और भावों का संवरण, अर्थों से प्रकाशन और जनमानस का ध्वनिलय से आह्लादन करता है, वह छंद है।"[7] अर्थात् कवि जब अपनी प्रामाणिक अनुभूति से उत्पन्न भावों की अभिव्यक्ति छंदों में करता है तब उसके साधारणीकरण से श्रोता पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण उसके मूल उद्देश्य आनंद की प्राप्ति होती है। सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी के शब्दों में, "छंद काव्य के उस तत्व का नाम है जिसमें वर्णों या मात्राओं की संख्या, गुरु, लघु का क्रम, यति, गति की व्यवस्था निर्धारित हो। इनके भेदोपभेदों एवं वर्ण, मात्रा, यति, गति, चरण आदि की व्यवस्था करने वाले शास्त्र को छंदशास्त्र कहा जाता है।"[8] पाद या चरण, मात्रा और वर्ण, संख्या और क्रम, लघु और गुरु, गण, यति, गति और तुक ये सभी छंदों के अंग हैं। आचार्य भरतमुनि ने छंद को परिभाषित करते हुए अपने पंचमवेद कहे जाने वाले 'नाट्यशास्त्र' में लिखा है कि,

एवं नानार्थसंयुक्तैः पादैर्वर्णविभूषितैः।
चतुर्भिस्तु भवेद्युक्तं छन्दोवृत्ताभिधानवत्।।39।।

इस प्रकार शब्दों के गठन द्वारा जो पद्य-रचना की जाती है उसमें चार पाद होते हैं – उसमें अनेक अर्थों का अभिव्यंजन रहता है तथा वर्णों के (गुरु तथा लघु स्वरूपों के) द्वारा यह निर्मित की जाती है। ऐसी रचना छंद या वृत्त नाम से अभिहित की जाती है।[9] आगे वे छंदों के नाट्य-प्रयोग में महत्व को बताते हुए छंद और शब्द के संबंध को भी दर्शाते हैं –

नानावृत्तविनिष्पन्ना शब्दस्यैषा तनुः स्मृता।।41।।
छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम्।
एवं तूभयसंयोगो नाट्यस्योद्योतकः स्मृतः।।42।।

यह छन्द जो कि विभिन्न अक्षरों द्वारा वर्णिक वृत्त का स्वरूप धारण करता है, शब्दों का ढाँचा है। क्योंकि वृत्तहीन कोई शब्द तथा शब्दहीन कोई वृत्त नहीं होता। ये दोनों परस्पर मिल कर ही नाट्य-प्रयोग को अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।[10] इस प्रकार कोई भी शब्द जब भावों से युक्त हो जाता है तब वह छंदों के माध्यम से भावसंगीत को उत्पन्न करता है।

छंद शास्त्र से संबंधित व्यवस्थित प्रथम ग्रंथ पिंगल द्वारा रचित 'छंदसूत्र' है। इसलिए पिंगल को छंद का प्रवर्तक एवं उनके द्वारा रचित 'छंदसूत्र' ग्रंथ को इस परंपरा का आदि ग्रंथ माना जाता है। आचार्य पिंगल छंदशास्त्र के प्राचीनतम उपलब्ध सूत्रकार हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक छंदों से संबद्ध सामग्री इन ग्रंथों में प्राप्त होती है,

ऋक्प्रातिशाख्य, शांखायन श्रौतसूत्र, सामवेद का निदानसूत्र और कात्यायन-कृत दो छंदोऽनुक्रमणियाँ। वेदों में मात्रिक छंदों का अभाव है क्योंकि वैदिक छंद वृत्तात्मक हैं। इनमें वर्णों की संख्या निर्धारित होती है।

छंद का महत्व : वेद भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं। वैदिक मंत्रों में सर्वत्र सांस्कृतिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इन्हें छंदों के माध्यम से संगीतात्मकता, स्मरणीयता और उच्चारण की शुद्धता की सुनिश्चितता प्रदान की जाती है। भारतीय लोक-संस्कृति मौखिक परंपरा पर आधारित है। यह लोकसाहित्य के रूप में संग्रहित है। प्राचीन भारत में वेदों का संचार श्रुति परंपरा से होता था। छंदों की लयात्मकता ने मंत्रों को याद रखने, दोहराने और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखने में सहायता की। इससे वैदिक मंत्रों के मौखिक परंपरा की रक्षा ही होती है। छंदशास्त्र ने वेदों को काव्यात्मक रूप प्रदान कर उसका नियमन किया तथा उसे सौंदर्यपूर्ण बनाया। वैदिक मंत्रों का सही उच्चारण उसके सम्यक् ज्ञानार्थ के लिए अति आवश्यक होता है। ऐसे में छंद वेदों के उच्चारण एवं स्वर संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वह वेदों के स्वर, मात्रा, दीर्घता-ह्रस्वता आदि के नियमन में सहायक है। यह वैदिक मंत्रों के सही उच्चारण और अर्थ की शुद्धता के लिए अनिवार्य है।

आधुनिक संदर्भों में आज भी छंदशास्त्र न केवल वैदिक अध्ययन में बल्कि काव्य-निर्माण, संगीत और नाट्य आदि में मूलाधार है। छंद के साहित्यिक महत्व को दर्शाते हुए कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' लिखते हैं कि, "कविता-धारा को प्रवहमान और वेगवान रखने के लिए छंदों के तट बनाये रखने की आवश्यकता सदा रहेगी। छंद कविता को सुकंठ ही नहीं, दीर्घजीवी भी बनाता है। पुनः प्रेम, करुणा, भय आदि के अतिरेक के क्षणों में अभिव्यक्ति स्वतः छंदोंमयी हो जाती है। जब लेखन कला का उद्भव नहीं हुआ था, तब काव्य को सुरक्षित रखने अथवा संरक्षित करने के साथ ही संप्रेषित करने का दायित्व छंद का ही था। काव्य के वाचिक संप्रेषण में छंद की ही सर्व प्रमुख भूमिका रही है।"[11]

निष्कर्ष : इस प्रकार वर्तमान संदर्भ में भारत अपनी मूल संस्कृति को पुनर्स्थापित कर विश्व का मार्ग प्रशस्त करने में अग्रसर है। ऐसे में आवश्यकता है वेद-वेदांगों के शुद्ध और कठोर अध्ययन की। क्योंकि भारतीय संस्कृति का ज्ञान हमारे वेदों में निहित है। इन वेदों के अध्ययन के लिए छंदों के ज्ञान की भी उतनी ही आवश्यकता है। छंदों में विरचित वेद मंत्रों के अशुद्ध उच्चारण से होने वाली अनर्थता के अनेक उदाहरण आज समाज में देखने को मिलते हैं। जैसे पंडितों द्वारा विवाह में होने वाले मंत्रों के अशुद्ध उच्चारण से निर्मित पारिवारिक विघटन की समस्या आधुनिक भारत की सबसे बड़ी समस्या है। इससे बचने के लिए हमें भारतीय शिक्षा व्यवस्था में प्राथमिक शिक्षा से ही वेद-वेदांग साहित्य का अध्ययन-अध्यापन कराना सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है। इस अध्ययन से भारतीय ज्ञान परंपरा की मौखिक धारा पुनः प्रवाहित होकर संपूर्ण विश्व को अमृतमय कर देगी।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, उ. प्र. 2018 ई., पृ. 189
2. सर्वज्ञभूषण, वैदिकवाङ्मय, संस्कृतगंङ्गा, प्रयागराज, पृ. 111, उद्धृत
3. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', काव्यशास्त्र-विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 277
4. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, उ. प्र. 2018 ई., पृ.199
5. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', काव्यशास्त्र-विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 277
6. आचार्य रामकिशोर मिश्र, संस्कृत छंदों का उद्भव तथा विकास, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ, वि.सं. 2058, पृ.9-10 – उद्धृत (महोपाध्याय विनयसागर, वृत्तमौक्तिक भूमिका))
7. वही, पृ. 10
8. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, भारतीय काव्यशास्त्र, अमन प्रकाशन, कानपुर, सन् 2018, पृ. 149
9. संपा. श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, आचार्य भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं. 2072, पृ. 212
10. वही, पृ. 213
11. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', काव्यशास्त्र-विमर्श, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सन् 2012, पृ.278